Impact Factor – 6.261 ISSN – 2348-7143

INTERNATIONAL RESEARCH FELLOWS ASSOCIATION'S

RESEARCH JOURNEY

Multidisciplinary International E-research Journal

PEER REFREED & INDEXED JOURNAL

February-2019 Special Issue – 111 (C)

साहित्य, संस्कृति, समाज तथा मीडिया रुपांतरण

अतिथि संपादक
डॉ. व्ही. बी. गायकवाड
प्राचार्य,
के.टी.एच.एम. महाविद्यालय, नाशिक (महाराष्ट्र)

विशेषांक संपादक
डॉ. पी. व्ही. कोटमे
हिंदी विभागाध्यक्ष,
के.टी.एच.एम. महाविद्यालय, नाशिक (महाराष्ट्र)

मुख्य संपादक
डॉ. धनराज धनगर (येवला)

SWATIDHAN INTERNATIONAL PUBLICATIONS
For Details Visit To : www.researchjourney.net

© All rights reserved with the authors & publisher Price : Rs. 800/-

अ.क्र.	शीर्षक	लेखक/ लेखिका	पृ.क्र.
33	समकालीन साहित्य और सामाजिक संदर्भ (मीरा कांत कृत नेपथ्य राग के विशेष संदर्भ में)	डॉ.विजयप्रसाद अवस्थी, संगीता देशमुख	141
34	हिंदी साहित्य और मानवीय मूल्य	सविता तोडमल	145
35	स्वदेश दीपक के नाटकों में संवैधानिक एवं मानवीय मूल्य	बन्सीलाल गाडीलोहार, डॉ.पी.व्ही.कोटमे	148
36	बालसाहित्य : नैतिक मूल्य और भारतीय शिक्षा	डॉ.विजयप्रसाद अवस्थी, सागर चौधरी	152
37	कांति त्रिवेदी के कथा साहित्य में संस्कृति की अभिव्यक्ति	रुपाली डोईफोडे	157
38	हिंदी साहित्य के विविध आयाम\विचारधाराएँ	डॉ.जालिंदर इंगले , जयश्री गायकवाड	159
39	दिव्या – ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में मानव मूल्यो का अन्वेषण	डॉ.श्वेता चौधारे	162
40	मीडिया के विभिन्न माध्यमों में हिंदी साहित्य का प्रयोग	श्री.अमोल दहातोंडे	168
41	मीरा कांत के साहित्य में समाज और संस्कृति	माधुरी बोरस्ते	171
42	सुशीला कपूर की एकांकीयों में सामाजिक संदर्भ	श्रीमती कल्पना शेजवळ, डॉ.पी.व्ही. कोटमे	174
43	निर्मला सिंह की कहानियों में संक्रमणकालीन जीवन मूल्यों की स्थिति : दशा और दिशा	डॉ. भारती धोंगडे, प्रा. शांताराम वळवी	178
44	समकालीन साहित्य में सामाजिक संदर्भ	डॉ. पुष्पा गायकवाड	183
45	'ममता' कहानी में धर्म और मूल्यों की स्थापना	प्रा. कल्पना शेळके	188
46	समाज में मिडिया की भूमिका	डॉ. शैलजा जयस्वाल	190

इस अंक के सभी अधिकार प्रकाशकने आरक्षित किये है। प्रकाशित आलेख पुन:प्रकाशित करने प्रकाशक एवं लेखक की संयुक्त लिखित अनुमति जरुरी है । प्रकाशित आलेखो में व्यक्त मंतव्य केवल लेखक के मंतव्य से संपादक और प्रकाशक सहमत हो, यह जरुरी नहीं है । आलेख के संदर्भ में उपस्थित का ***(Originality of the papers)*** *की जिम्मेवारी स्वयं लेखक की है ।*

'RESEARCH JOURNEY' International Multidisciplinary E- Research Journal
Impact Factor - (SJIF) - 6.261, (CIF) - 3.452(2015), (GIF)-0.676 (2013)
Special Issue 111 (C) : साहित्य, संस्कृति, समाज तथा मीडिया रुपांतरण
UGC Approved Journal
ISSN : 2348-7143
February-2019

'दिव्या' – ऐतिहासिकता के परिप्रेक्ष्य में मानव मूल्यों का अन्वेषण

डॉ. श्वेता चौधारे,
हिंदी विभागाध्यक्ष,
कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय,
सोनई।
भ्रमणध्वनि – ९८२३२६८९८७
E-mail Id - choudhares@gmail.com

शोध सारांश –

नैतिक–आध्यात्मिक मूल्यों को महत्व देनेवाला हमारा देश आज नई तकनीकों, संसाधनों की मदद से विकास की तेज रफ्तार के साथ भौतिक मूल्यों को स्वीकार रहा है। भौतिक उन्नति की ओर लगी हमारी निगाहों ने इतिहास के स्वर्णीय क्षणों का विस्मरण कर उसे धूल–धूसरित–सा बना दिया। वर्तमान मूल्यहीनता की स्थिति ने हमारी नैतिकता, आध्यात्मिकता को प्रभावित कर देश, समाज के चरित्र पर असर करना शुरू कर दिया। अत: अब समय आ गया है कि हम मूल्यों के प्रति जाग्रत हो,क्योंकि मूल्य, नैतिकता के बिना मनुष्य की मुक्ति संभव नहीं। हिंदी साहित्य जगत ने ऐसी कई रचनाएं संसार को समर्पित की है, जो मानवीय मूल्यों की सही मायनों में वाहिनी सिद्ध हुई है। हिंदी उपन्यासों में यशपाल के 'दिव्या' एवं 'अमिता' जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों को देखा जा सकता है, जिनमें तत्कालीन समाज एवं धर्म की स्थिति के साथ राजनीतिक स्थिति की वास्तविकता पर प्रकाश डाला गया है। यशपाल की बौद्धकाल पर आधारित ऐतिहासिक कल्पना 'दिव्या' अतीत का मन्थन कर वर्तमान में जी रहे मनुष्य को ज्ञान कराती है कि वह मात्र भोक्ता नहीं, भविष्य का कर्ता–निर्माता भी है। रचनाकार ने अपनी ओर से जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना की है, उसे इस शोधालेख में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द –

मानवीय मूल्य, इतिहास, युग मूल्य, मूल्यहीनता, आध्यात्मिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य।

शोधालेख –

मानवीय मूल्यों की पुन:स्थापना में इतिहास से बेहतर कोई संसाधन नहीं। श्रेष्ठ एवं उदात्त मूल्यों पर आधारित भारतीय संस्कृति की झांकी इतिहास में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इतिहास में छिपे अतीत के इसी गौरवगान को लेकर हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन राष्ट्रीय जागरण के समांतर हुआ। किशोरीदास गोस्वामी से लेकर अबतक चली आ रही हिंदी की ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा ने हमारी संस्कृति के प्राचीन गौरव, जात्याभिमान, राष्ट्रप्रेम, वीरता को प्रधान मूल्य के रूप में स्वीकृत किया। कर्तव्यनिष्ठा, राष्ट्र हेतू, त्याग–उत्सर्ग की भावनाओं से भरे, सामंती शोषण में सर्वसामान्य नर–नारी के शोषण तंत्र को उजागर कर उसकी सामाजिक स्थिति पर भाष्य करते ऐतिहासिक उपन्यासों को इस परंपरा में देखा जा सकता है। आज भले ही हम स्वतंत्र हो, पर भविष्य का पथ प्रशस्त करने इन मूल्यों की सदैव आवश्यकता पड़ेगी और इन मूल्यों को प्रस्तुत करनेवाले ऐतिहासिक उपन्यासों की भी। मनुष्य के लिए सदैव पथ प्रदर्शक बने रहनेवाले यह मानवीय मूल्य ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा प्रत्यक्ष होकर वरेण्य होते है। स्वातंत्र्योत्तर काल में रचित

इनमें से अधिकतर उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना जैसा मूल्य प्रधान बनकर आया है। इसके अलावा तत्कालीन परिवेश को देखते हुए जीवन मूल्यों की खोज करने का भी महत प्रयास रचनाकारों ने किया है।

यशपाल द्वारा १९४५ में रचित 'दिव्या' उपन्यास गणतंत्र में नारी की स्थिति के साथ,तत्कालीन द्विज एवं शूद संघर्ष को दर्शाता है। उपन्यास में यथासर्वत्र आध्यात्मिक मूल्य दिखाई देता है। बौद्ध धर्म का प्रभाव तत्कालीन समाज पर अधिक दिखाई देता है। सागल में मधुपर्व के उत्सव पर दिव्या के नृत्य द्वारा मगली की व्याकुलता को लक्षित कर भिक्षु जनता को बौद्ध धर्म संगत विचारों से अवगत कराते हुए उद्बोध देता है कि माया के बंधन में जीव को इसी प्रकार सुख की मिथ्यानुभूति का भ्रम होता है। वहीं मारिश जैसे आस्थावादी परलोक को केवल अनुमान और कल्पना मानते है, प्रत्यक्ष नहीं। उसके अनुसार परलोक का विश्वास दिलानेवाला उसे सिर्फ दूसरों के कथन से जानता है। प्रत्यक्ष परलोक को देखकर किसी ने उसके सत्य होने का साक्ष्य नहीं दिया। मारिश जीवन, संसार को सत्य मानता है,जो स्थूल, प्रत्यक्ष शरीर का अनुभव है। वह परिवर्तन में ही संसार का सुख–आकर्षन मानता है।

रचनाकार तत्कालीन सामाजिक मूल्य को भी कथा द्वारा जीवित करता है। जिसके अनुसार समाज पर धर्म की पकड़ काफी मजबूत थी। जनमत पर वर्चस्व करनेवाले धर्म को पुरोहित अपने अनुसार व्याख्यायित कर रहे थे। यह प्रचार जोरों से हो रहा था कि जो स्वामी–सामंत की आज्ञा से विमुख होगा वह परलोक में हीन हो,श्वान का जन्म पाकर दंड़स्वरूप स्वामी की सेवा करेंगा। अत: पुर्नजन्म तथा परलोक बिगड़ने का डर जनसामान्य के मन–मस्तिष्क पर छाया रहता। विवाह जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्य का अवमूल्यन हो रहा था। बहुपत्नीत्व की प्रथा जारी थी। रुद्रधीर विवाहित होते हुए भी दिव्या से विवाह की इच्छा रखता है। तो दूसरी और पृथुसेन की पत्नी बन चुकी सीरो का व्यवहार उच्छृंखलता की सीमाएं तोड़ने का प्रयास कर रहा था। नैतिकता की आड़ में समाज के नाम पर चलने वाले नृत्य नर–नारी को मर्यादाहीन बना रहे थे।

स्वाध्याय मूल्य का चित्रण उपन्यास के कुछ पात्रों के माध्यम से किया गया है। सागल के धर्मस्थ देव शर्मा के माध्यम से हुआ है, जिनके प्रासाद में सुरा–सुंदरी की अपेक्षा ज्ञान और तर्क का अनुराग प्रबल था। इसी तरह कला अध्यापन के नियम कला क्षेत्र के विद्वतजनों द्वारा बनाए जाते थे। जनपदकल्याणी मल्लिका जैसे कलाविद् कला को साधना मानते,जिसके लिए वे प्रवृत्तियों का दमन आवश्यक मानते। अपात्र शिष्य के हाथों कला का अपमान और उपहास होता है, यही धारणा प्रचलित थी। कला के लिए आसक्ति और साधना का संयोग असंभव एवं अनावश्यक माना गया था। पृथुसेन के पराजित होने पर मल्लिका की सेवा में पुन: लौटी शिष्या मादुलिका द्वारा किए गए कला के अपमान को देख मल्लिका उसे अपने प्रासाद से बहिष्कृत करती है।

तत्कालीन वर्णव्यवस्था के द्वारा यशपाल मूल्य चित्रण करते है। दासों के आधिकार अत्यंत सीमित थे। अपने कौशल्य से उच्चपद; सम्मान पानेवाले दासों को अभिजातवंशीय नीचा दिखाने का अवसर न छोड़ते। दिव्या की शिविका को कंधा देनेवाले दासपुत्र पृथुसेन को अभिजात वंशीय युवकों के साथ शिविका में कंधा देने का अधिकार नहीं दिया जाता। दासों का द्विजों द्वारा सम्मान समाज मान्य नहीं था। इसलिए धर्मस्थ के प्रासाद में दास सारथि पुत्र पृथुसेन का दिव्या द्वारा अर्ध्य से सत्कार देख पितृव्य उसे उपालंभ देते है कि वह तथागत की शिष्या होने के योग्य है।

धनसंचय कर दास समाज में सम्मान के अधिकारी तो बनते, पर वे क्षुद्र ही माने जाते थे। पृथुसेन के पिता प्रेस्थ कभी दास थे, तत्पश्चात वे स्वयं अनेक दासों के स्वामी, सागल के श्रेष्ठि, गणपति के प्रमुख मंत्रणादाता बनकर भी लोगों की मान्यता थी कि धन मनुष्य का मूल्य नहीं निश्चित करता। शिविका प्रसंग में

पृथुसेन का रुद्रधीर के कथन पर खड्ग खींचना भी द्विजों को सह्य नहीं होता। इसे वे वर्णाश्रम के लिए संकट मानते है। सागल में द्विजों और क्षुद्रों का संघर्ष प्रकट होता है। धर्मस्थ के पुत्र होकर भी विष्णु शर्मा जलती टिप्पनी करते है कि वर्णाश्रम को न्यून करने ही अशोक ने मुंड़ियों की शरण ली। वे मानते है कि ब्राह्मण शूद्र के समान नहीं। यदि शूद्र दास भी द्विज के समान अधिकार पा सकता है, तो द्विजत्व का क्या अर्थ है? वह एश्न उठाता है कि क्या ब्राह्मण के मंत्र और क्षत्रिय के शस्त्र की शक्ति शूद्र की सेवा के लिए है ?

दिव्या की दासी छाया को आर्या अमिता कुलटा, छली कहसरल सेवा से इसलिए निकाल देती है कि दासी होकर भी छाया कुल ललनाओं की भांति आर्य विनय शर्मा के सम्मुख लजाती है। शिविका प्रसंग में सागल के धर्मस्थान द्वारा शूद्र पृथुसेन को न्याय देब्राह्मण रुद्रधीर को निर्वासन का दंड़ देने पर रुद्रधीर इसेवर्णाश्रम पद्धति का अपमान मान उसकी रक्षा हेतु सकृद केंद्रस से मित्रता तथा संधि का प्रस्ताव रखता है,ताकि वह पौरव वंश को मद्र पर पुनः स्थापित कर सकें।

मानवीय मूल्यों की संकल्पना नारी के प्रति भाव बिना अधुरी है। जिसे उपन्यास में मूल समस्य के रूप मे देखा जा सकता है। तत्कालीन समाज में नारी को विशेष स्थान था। उसके अधिकारों की थोड़ी–बहुत रक्षा की गई थी। जनपदकल्याणी मल्लिका के समाज में नियम–सा था कि सामंत दासी को त्रस्त न करें, वह दासी से स्वतंत्र व्यवहार नहीं कर सकते थे। मात्र दास से व्यापारी बना प्रेस्थ जैसा स्वार्थी पात्र मानता था कि स्त्री जीवन की पूर्ति नहीं,जीवन की पूर्ति का एक उपकरण,साधन मात्र है। बौद्ध धर्म की दृष्टि से नारी का स्थान भी हेय था। धर्म जहाँ शांति के लिए बुद्ध, संघ की शरण में आने का आह्वाहन करता है,वहीं स्थविर के अनुसार, धर्म के नियमानुसारस्त्री को अपने पति, पुत्र, पिता या दासत्व की स्थिति में स्वामी की आज्ञा लेना अनिवार्य था। अर्थात कुल नारी किसी भी हालत में स्वतंत्र नहीं थी। मात्र वेश्या को स्वतंत्र नारी मानकर संघ शरण के लिए योग्य माना गया था। उपन्यास की पात्र दिव्या के सामाजिक पतन के लिए कहीं–न–कहीं तत्कालीन बौद्ध धर्म के नियम भी कारणीभूत थे,जो स्त्री की दयनीयता के स्थान पर उसके सामाजिक स्तर पर ध्यान लगाए था।

राजनीतिक मूल्यमें अवसरवादिता जैसा मूल्य पाया जाता है। युद्ध के समय में प्रत्येक जन अपने स्वार्थ में लिप्त हो जाता था। गण के महाशाल, श्रेष्ठि, व्यापारी युद्धावश्यक सामग्री मनचाहे मूल्य पर बेच धन बटोरते है। प्रेस्थ भी सैकेड़ों अश्व और रथों के विक्रय से धनलाभ करता है। युद्ध के प्रति वैश्यों में उदासीनता थी।

तत्कालीन समाज के धार्मिक मूल्य में जहाँ बौद्ध मत का प्रचार–प्रसार बड़े जोरों से हो रहा था, सुख–दुख को मिथ्या मान तथागत की शरण में आने का उपदेश दिया जा रहा था,वही बौद्ध धर्म के प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसे विचारों का बीजवपन हो रहा था, जो जीवन, दुख को भ्रांति मान जीवन क्रम को नित्य मान रहा था। ब्राह्मण पुष्यमित्र द्वारा मौर्य कुल के विनाश की घटना को द्विज उत्थान एवं वर्णाश्रम के पुनरुत्थान से जोड़ा जा रहा था।यज्ञ और बलि पुनः आरंभ हो चुके थे। इस स्थिति से टक्कर लेने बौद्ध उपासक अपने धर्म का संदेश पुर्ण बल के साथ फैलाने लगे।

रुढ़ि–रिवाजों में जकड़े समाज में शकुन देखने की प्रथा थी। युद्ध के लिए प्रस्थान करने के पूर्व नक्षत्र आदि देख हार या जीत का अनुमान लगाया जाता। जिसके कारण अंधश्रद्धा समाज में बढ़ने लगी, तांत्रिकों का जोर बढ़ गया। दिव्या की दासी छाया अपने प्रेमी की रक्षा के लिए कवच प्राप्त करती है,तो दिव्या भी पृथुसेन की रक्षा के लिए रक्षक कवच पाने स्वर्ण की अंगूठी तांत्रिक को देती है। पृथुसेन के पिता प्रेस्थ के देवस्थान महायज्ञ,पुण्य धातु चैत्य में श्रमणों द्वारा परित्राण दिवासेना का सूत्रपाठ और यवन देवी 'जीयस' के मंदिर में अश्व–बलि का समारोह कराते है।

द्विजों के उत्थान के समय संघ स्थविर द्वारा अभिमत पर संकट की बात पर स्थविर चीबुक मानते है कि धर्म पर संकट नहीं आता, केवल धर्म के प्रति विश्वास प्रकट करनेवाले जन भयभीत होकर संकट का अनुभव करते है। धर्म कभी अधिक मनुष्यों के हृदय और विश्वास में स्थान पाता है,कभी कम मनुष्यों के। बौद्ध धर्म के इसी विश्वास के कारण वह हजारों वर्ष बाद भी अक्षुण्य है।

बुद्ध के अभिमत धर्म के द्वारा अहिंसा मूल्य की स्थापना की गई है। बौद्ध भिक्षु स्थविर पृथुसेन की हिंसा को विमुख कर विनय का महत्व स्पष्ट कर वास्तविक विजय मन की भावना को वश करने में मानते है। स्थविर के अनुसार वीर और साहसी वही है जिसे कभी किसी का भय, त्रास नहीं। स्थविर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा मूल्य के कारण पृथुसेन बौद्ध धर्म में दीक्षित हो, बिना भय के रुद्रधीर के सम्मुख उपस्थित हो उससे सार्वभौम मैत्री के सुख की भिक्षा मांगते है।

मद्र पर यवन राज्य के बावजूद धर्मस्थ देव शर्मा में न्यायवृत्ति का मूल्य दिखाई देता है, जो वर्णाश्रम धर्म की नीति, प्रथा, व्यवस्था में यवन पद्धति का संपुट दे अनेक वर्ष न्याय करते है। फिर भी तत्कालीन न्यायव्यवस्था में सामंतों के विचार, अधिकार और शक्ति की रक्षा का विधान ही न्याय था। चाहे वह पौरव की सत्ता हो, मिलिंद की या फिर गणराज्य की सत्ता हो। मद्र के गणराज्य में धर्मस्थान में सिंह और मृग के एक साथ जल पीने का चिह्न उत्कीर्ण था। इस चिह्न के साथ जो सिद्धांत था,वह न्यायव्यवस्था के प्रति आदर के लिए आवश्यक था।परंतु चिह्न के अनुसार दोनों प्राणी शासक के कारण विवश है और शासक की इच्छा ही न्याय का आधार है,यही सत्य था।

सागल से पलायन के पश्चात दिव्या दासी नाम की दासी बनती है। मात्र पुरोहित के शिशु के कारण अपने शिशु के दुख को देख इस संत्रास से मुक्ति पाने वह आत्महत्या का प्रयास करती है। महाउपरिक उसे इस बात से अवगत कराते है कि दासी के रूप में वह अपने स्वामी की संपत्ति है। दासी का सेवा से विमुख होना चौर्य कर्म है। पर वे उदार हो दासी के आत्महत्या के कारण को भी जानना चाहते है। जिसे सुन वह ब्राह्मण को दासी पीड़न के अपराध में अभियुक्त मानते है। क्योंकि दास भी द्विज के समान राजा की प्रजा है। अत: दासी पुत्र के हत्या के अपराध में महाउपरिक ब्राह्मण पर दो सौ स्वर्णमुद्रा का राजदंड़ लगाते है। सो भी इसलिए कि शास्त्र ब्राह्मण को मृत्यु और कारावास का दंड़ नहीं देता। इस प्रकार महाउपरिक में न्याय मूल्य देखा जा सकता है।

मारिश में निर्भीकता का मूल्य दिखाई देता है। ब्रह्मलोक और निर्वाण दोनों की अवज्ञा करनेवाला,सागल के धर्मज्ञ विप्र समाज द्वारा लांछित, तथागत के अभिधर्म द्वारा अभिशप्त, लोकायत के समर्थक, केवल स्थूल प्रत्यक्ष इहलोक को सत्य और जन्मान्तर में कर्मफल को असत्य बतानेवाला मारिश तथागत के पूर्व अवतारों को मिथ्या विश्वास कह, जातक कथा विहार के सिंह द्वार पर उत्कीर्ण करना अस्वीकार करता है। वह भोग–लिप्सा के सुख को मिथ्या भ्रांति भी नहीं मानता। मारिश परलोक के तत्व को नकारता है। ऐसे विश्वास को वह दासता मानता है और संकट से पलायन कर रक्षा को निर्बलता। मारिश व्यक्ति को स्वतंत्र कर्ता मानता है और स्वतंत्रता के अनुभव को जीवन। उसके अनुसार मृत्यु भय का अंत है। वह सामान्य जन को स्वयं के लिए लड़ने को प्रेरित करता है। अपने अधिकार,मनुष्यत्व के लिए जीने–मरने की प्रेरणा देता है।

सीरो के रूप में ऐसी स्त्री की कल्पना की गई है जो उच्च पदस्थों से संबंधित होते हुए भी काम्य भोगों को भोगती, सुंदर युवा पुरुषों से आदर की आशा करती है। उसके रंगरंजित ओंठ केवल मदिरा से धुलते। रसवैचित्र्य उसे भिन्न–भिन्न ओंठों में ही मिलता। स्पर्शसुख उसके लिए युवा पुरुषों की बलिष्ठ भुजाओं और

लोमपूर्ण कठोर वक्षस्थल के अतिरिक्त न था। मूलतः सीरो की भावना पुरुष से तुलना करने की थी। वह द्विज कुल की पत्नी के समान दासत्व नहीं चाहती थी। अपने यवन रक्त पर गर्व करते हुए वह पति के अपमान और उसे अपदस्थ करने की धमकी से भी नहीं चूकती। राजसत्ता के चिह्न,छत्र एवं चंवर धारण करने का अधिकार मद्र कुल के गणपति तथा जनपदकल्याणी को था, सीरो बेझिझक इन चिह्न को धारण करती है। सीरो ऐसे मूल्यों को लेकर आती है जिसमें विद्रोहात्मता तो है, पर उसका आचरण हमारे समाज में मर्यादाहीन के अलावा कुछ नहीं कहा जा सकता।

यशपाल का यह उपन्यास न केवल तत्कालीन मूल्यों का चित्रण करता है, बल्कि मूल्यहीनता को भी दर्शाता है। दास व्यवसाय तत्कालीन समाज पर कलंक के समान था। अनेक श्रेष्ठी, व्यवसायी इस दास व्यापार से जुड़े हुए थे। सीमांत के प्रत्येक युद्ध के पश्चात का काल दास व्यवसाय के लिए अनुकूल समय माना जाता। दास व्यवसाय के लिए भी राजनियम थे। शौल्किक राजपुरुष प्रत्येक दास–दासी के क्रय का ताड़पत्र देखकर यह निश्चित करते कि उनमें से कोई अपहृत या स्वामी की सेवा से भागा हुआ दास–दासी या कोई द्विज संतान तो नहीं है। प्रत्येक दास के विक्रय पर एक निष्क कर था। दासियों द्वारा उत्पन्न छोटे शिशुओं को भी चार–पाँच मास की अवस्था में ही बेचा जाता। उपन्यास में उल्लेखित के अनुसार चैत्र मास में दक्षिणापथ में दासों का मेला लगता था। दास व्यवसायी प्रतूल की कुछ दासियों का काम था कि प्रति अठारह मास पश्चात संतान उत्पन्न करना। प्रतूल इन दासियों को न बेच इनकी संतानों को बेंचता। जो किसी जानवर को बेचने समान ही था।

इस तरह यशपाल रचित 'दिव्या' उपन्यास में बौद्धकालीन परिवेश में नाना मानवीय मूल्यों की सृष्टि को देखा जा सकता है। एक ओर यह उपन्यास सदियों से दिव्या के रूप में सदियों से दमित– शोषित नारी की दशा का वर्णन करता है, वही ऐतिहासिकता की क्रोड में चिरंतन बन चुके मानवीय मूल्यों को भी दर्शाता है ।

निष्कर्ष:

प्रत्येक रचना मूल्य के प्रकटीकरण का उदात्त हेतु लिए होती है। परिवर्तन के इस काल में नई सोच एवं जीवन शैली में ढले नए मूल्य बनते जाएगें, फिर भी नई समाज व्यवस्था का निर्माण करने, हमारे जीवन को नया आधार देने पुराने मूल्यों की जरुरत हमें पड़ेगी। ऐतिहासिक उपन्यास मात्र कल्पना नहीं है। इन उपन्यासों की कथा सार्थक है,प्रासंगिक है। 'दिव्या' उपन्यास में चित्रित विविध चरित्रों के पारस्पारिक आचरण, व्यवहार तथा विचारों के रूप में मूल्यों का चित्रण हुआ है। मूल्यों की दृष्टि से व्यक्ति महत्वपूर्ण होती है, जो जीवन के यथार्थवादी व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करती है। उपन्यास में पात्र मूल्यों की रक्षा करते है। उपन्यास 'दिव्या' के पात्र मारिश में मानवता जैसा मूल्य है, देवशर्मा न्यायी है, तो दिव्या स्वयं वर्णाश्रम व्यवस्था में सम्मान–सुरक्षा और स्वतंत्र व्यक्तित्व की मांग करनेवाली समकालीन नारीत्व है। उपन्यास में मानव मूल्यों, जीवन मूल्यों के अन्वेषण, उद्घाटन का यत्न हुआ है। इस कृति द्वारा यशपाल समाज मूल्यों की स्थापना पर जोर देते हुए समाज परिवर्तन की उम्मीद कर मूल्य परिवर्तन स्वीकारने की दृष्टि देते है। क्योकिं यहीं नवीन मूल्य समाज को गति देंगे, जो जीवन दर्शन में परिवर्तन करेंगे। सर्वसामान्य कला मूल्य को जीवन मूल्य में परिवर्तित करना साहित्यकार के लिए कसौटि का क्षण होता है। सफल उपन्यासकार युग मूल्यों को आधार बनाकर ही उपन्यासों का सृजन करता है। जिसमें उपन्यासकार का जीवन दर्शन भी होता है, जिसके अनुकूल वह मूल्यों को रचनाओं में ढालता है।

सक्षेप में इन उपन्यासों में चरित्रों के द्वारा मानवीय मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया गया है। पात्रों के द्वारा रचनाकार उसे अभिषेत उन मूल्यों का सृजन करता है, जो मनुष्य के नैतिक उत्थान के लिए आवश्यक माने गए है। उपन्यास में परंपरागत मूल्य, पारिवारीक मूल्य, सामाजिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, राष्ट्रीय मूल्य की प्रतिस्थापना पर भी उपन्यासकारों ने जोर दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

१. दिव्या – यशपाल – संस्करण २०१०
२. हिंदी उपन्यासों का मूल्यपरक विवेचन–सविता किर्ते–विनय प्रकाशन,कानपुर– २०१३
३. साठोत्तरी कहानी में मानवीय मूल्य–विनीता अरोरा–नमन प्रकाशन,दिल्ली–१९९९
४. भारतीय संस्कृति में मानव मूल्य और लोककल्याण–सुकेश शर्मा–संजय प्रकाशन,कानपुर–२००८
५. मानव मूल्य कोश– सं.डॉ.धर्मपाल मैनी–किताबघर,नई दिल्ली–२००९
६. ऐतिहासिक उपन्यास : प्रकृति एवं स्वरूप– सं.डॉ.गोविंदजी–साहित्यवाणी–इलाहाबाद– १९७०
७. ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार–डॉ.गोपीनाथ तिवारी–साहित्यरत्न भंड़ार,आगरा–१९५८
८. ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य–बी.एम.चिंतामणी–चौखंबा विद्याभवन,वाराणसी–१९६८
९. हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास–डॉ.पारुकांत देसाई–चिंतन प्रकाशन, कानपुर– २००२